जीवराज जैन ग्रंथमाला, ग्रंथ १४

ग्रंथमाला-संपादक
प्रो० आ० ने० उपाध्ये व प्रो० हीरालाल जैन

श्री-रामचन्द्र-मुमुक्षु-विरचितं

पुण्यास्रवकथाकोशम्

आलोचनात्मक रीतिसे प्रस्तावना व परिशिष्ट आदि सहित

सम्पादक

प्रो० आ० ने० उपाध्ये
डीन, शिवाजी विद्यापीठ
कोल्हापुर

प्रो० हीरालाल जैन
जबलपुर विश्वविद्यालय
जबलपुर

और

पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री
जैन सं० स० संघ, सोलापूर

प्रकाशक

गुलाबचन्द हिराचन्द दोशी
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
सोलापूर

वीर नि० सं० २४९०] सन् १९६४ [विक्रम संवत् २०२०

मूल्य १० रु० मात्र

प्रकाशक :
गुलाबचन्द हिराचन्द दोशी
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
सोलापुर

मुद्रक :
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

JĪVARĀJA JAINA GRANTHAMĀLĀ, No. 14

General Editors :
Dr. A. N. UPADHYE & Dr. H. L. JAIN

ŚRĪ-RĀMACANDRA-MUMUKṢU'S

PUṆYĀSRAVA-KATHĀKOŚA

Critically edited with Introductions, Appendices etc.

BY

Prof. A. N. UPADHYE,
M. A., D. Litt.
Dean, Shivaji University,
Kolhapur.

Prof. H. L. JAIN,
M. A., LL. B., D. Litt.
Jabalpur University,
Jabalpur.

AND

Pt. BALCHANDRA, SIDDHANTA SHASTRI,
Jaina S. S. Sangha, Sholapur

Published by
Gulabchanda Hirachanda Doshi
Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Sangha
SHOLAPUR
1964

■

■

Price Rs. Ten only

First Edition; 1000 Copies

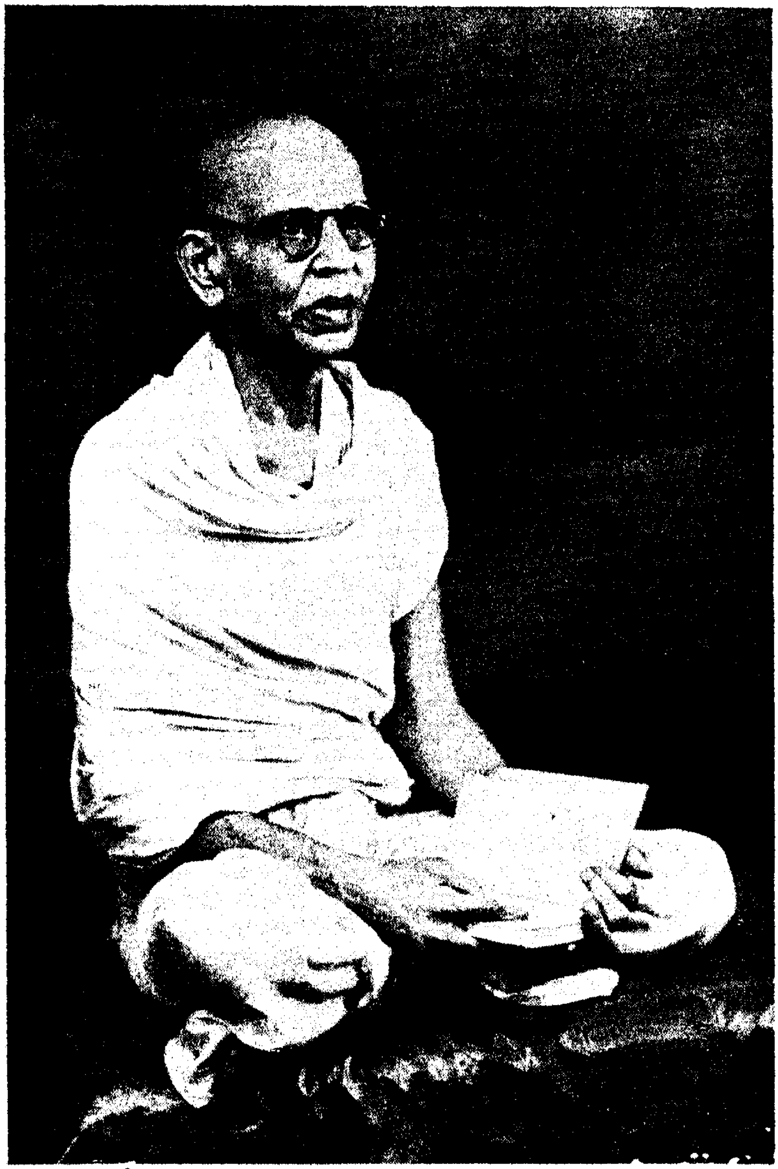
Copies of this book can be had direct from Jaina Saṁskṛti Saṁrakshaka Sangha, Santosha Bhavana, Phaltan Galli, Sholapur (India)

Price Rs. 10/- per copy, exclusive of postage

जीवराज जैन ग्रंथमालाका परिचय

सोलापूर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचन्दजी दोशी कई वर्षोंसे संसारसे उदासीन होकर धर्मकार्यमें अपनी वृत्ति लगा रहे थे। सन् १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्तिका उपयोग विशेष रूपसे धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यमें करें। तदनुसार उन्होंने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोंसे साक्षात् और लिखित सम्मतियाँ इस बातकी संग्रह कीं कि कौनसे कार्यमें संपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसंचय कर लेनेके पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्मकालमें ब्रह्मचारीजीने तीर्थक्षेत्र गजपन्था (नासिक) के शीतल वातावरणमें विद्वानोंकी समाज एकत्र की और ऊहापोहपूर्वक निर्णयके लिए उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्सम्मेलनके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीने जैन संस्कृति तथा साहित्यके समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचारके हेतुसे 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' की स्थापना की और उसके लिए ३०००० तीस हजारके दानकी घोषणा कर दी। उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढ़ती गयी, और सन् १९४४ में उन्होंने लगभग २,००,०००, दो लाखकी अपनी संपूर्ण संपत्ति संघको ट्रस्ट रूपसे अर्पण कर दी। इस तरह आपने अपने सर्वस्वका त्यागकर दिनांक १६–१–५७ को अत्यन्त सावधानी और समाधानसे समाधिमरणकी आराधना की। इसी संघके अन्तर्गत 'जीवराज जैन ग्रन्थमाला' का संचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी ग्रन्थमालाका चौदहवाँ पुष्प है।

पुण्यास्रवकथाकोशम्



स्व. ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी
संस्थापक, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर

6794

Table of Contents

General Editorial

The Jaina literature has been particularly rich in stories which have been utilised from earliest times for imparting ethical instructions to monks and laymen. These stories are, in the earliest strata of literature, narrated as in the Nāyādhammakahāo for conveying a moral lesson or indicated in the basic texts like the Ārādhanā and Uttarādhyayana for illustrating an ethical principle and later elaborated in the commentarial literature. In course of time, these stories came to be collected, for the benefit of the ordinary folk, to illustrate the advantages of practising religious vows and virtues. Thus, a large number of Kathākośas came to be compiled in different languages like Sanskrit, Prākrit and Apabhraṃśa and later, in some of the Modern Indian languages. Of these the Kathākośas of of Hariṣeṇa, Jineśvarasūri etc. have been published. Still, hawever, a greater bulk of them is known to exist, but has not seen the light of day.

The Puṇyāsravakathākóśa of Rāmacandra Mumukṣu has a unique position in this branch of literature in so far as it illustrates the fruits accruing from the practice of the six duties of house-holders, in this and in the next world. This work has been very popular as seen from the number of Mss. available and from its translations attempted in different languages. Pt. Nathuram Premi's rendering of it in Hindi (first published in 1907) has popularised it in the Hindi-knowing world. But unfortunately the original Sanskrit text of Rāmacandra remained unpublished. Of late, for the purposes of comparative study of ancient folklore, legends and religious stories, a demand for the original texts of such works has grown. And to meet this need, it was thought necessary to present an authentic text of the Puṇyāsravakathākośa. It will be seen that in this edition, beside the Sanskrit text, a neat Hindi translation is added; and a number of problems connected with this Kathākośa and its author are discussed in the Introduction. To facilitate further studies useful Indices are added at the end.

We are grateful to the authorities of the Jivarāja Jaina Granthamālā for undertaking to publish this work. It is very gratifying to note that Shriman Gulabchand Hirachand Doshi, the President of the J. S. S. Sangha, takes personal interest in all these publications. The scheme of publications is being enthusiastically pushed forward by Shriman Walchand Deochand and Shriman Manikchand Virachand to whom our best thanks are due.

Kolhapur
9-6-64

A. N. Upadhye
H. L. Jain

प्रधान सम्पादकीय

जैन साहित्यमें कथाओंका विशेष बाहुल्य है। ये कथाएँ प्राचीनतम कालसे मुनियों और गृहस्थोंको सदाचारका उपदेश देनेके लिए कही गयीं हैं। साहित्यके प्राक्कालीन स्तरमें कहीं कथाओंके आधारसे किसी नैतिक सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है, जैसे णायाधम्मकहाओ (ज्ञातधर्मकथा) नामक षष्ठ द्वादशांगमें, और कहीं किसी नैतिक व सैद्धान्तिक विवरणमें कथाओंका दृष्टान्त रूपसे संकेत मात्र कर दिया गया है, और फिर टीका-टिप्पण आदि व्याख्यात्मक रचनाओंमें उनका विस्तारसे वर्णन हुआ है, जैसे आराधना व उत्तराध्ययन सूत्रमें। कालान्तरमें जनसाधारणके हितार्थ धार्मिक गुणों और व्रतोंके पुण्यफलको उदाहृत करनेके लिए उन कथाओंका संग्रह किया जाने लगा। इस प्रकार प्राकृत, संस्कृत व अपभ्रंश, तथा पीछे अनेक वर्तमान-कालीन भाषाओंमें बहुत-से कथाकोश रचे गये। इनमें-से हरिषेण, जिनेश्वरसूरि आदि विरचित कथाकोश प्रकाशित हो चुके हैं। तथापि अधिकांश कथाकोश ऐसे हैं जिनके भाण्डारोंमें अस्तित्वका पता चल चुका है, किन्तु वे प्रकाशमें नहीं आये।

इस कथा-साहित्यमें रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्यास्रव-कथाकोशका स्थान अद्वितीय है, क्योंकि उसमें श्रावकोंके छह धार्मिक कर्तव्योंके पालनका लौकिक व पारलौकिक पुण्यफल वर्णित है। इस ग्रन्थकी जो अनेक प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं, व जो विविध भाषाओंमें अनुवाद किये गये हैं, उनसे इसकी लोकप्रियताका पता चलता है। हिन्दीमें जो पं० नाथूरामजी प्रेमी-द्वारा किया गया अनुवाद प्रकाशित हुआ (सन् १९०७ में) उससे हिन्दी-भाषी जगत्‌में इस ग्रन्थका अच्छा प्रचार हुआ है। किन्तु रामचन्द्र मुमुक्षुकृत मूल संस्कृत ग्रन्थ अप्रकाशित ही रहा। इधर कुछ कालसे प्राचीन कथा-कहानियों व धार्मिक आख्यानोंके तुलनात्मक अध्ययनके हेतु कथा-साहित्यात्मक मौलिक ग्रन्थोंकी माँग बढ़ रही है। इस माँगकी पूर्तिके लिए पुण्यास्रव-कथाकोशके एक प्रामाणिक संस्करणका प्रकाशन आवश्यक प्रतीत हुआ। प्रस्तुत संस्करणमें मूल संस्कृत पाठके अतिरिक्त स्वच्छ हिन्दी अनुवाद भी पाया जायगा, तथा प्रस्तवनामें ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता सम्बन्धी अनेक बातोंका विवेचन भी दिखाई देगा। इस विषयके विशेष अध्ययनकी सुविधाके लिए ग्रन्थके अन्तमें उपयोगी परिशिष्ट भी जोड़ दिये गये हैं।

इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिए हम जीवराज जैन ग्रन्थमालाके अधिकारियोंके बहुत कृतज्ञ हैं। यह बड़े सन्तोषकी बात है कि जैन संस्कृति संरक्षक संघके अध्यक्ष श्री गुलाबचन्द हीराचन्दजी दोशी इन प्रकाशनोंमें वैयक्तिक रूचि रखते हैं। प्रकाशन-योजनाको गति प्रदान करनेमें श्रीमान् बालचन्द देवचन्दजी तथा श्रीमान् माणिकचन्द वीरचन्दजी बड़ा उत्साह रखते हैं जिसके लिए वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

कोल्हापुर

९-६-६४

आ० ने० उपाध्ये

ही० ला० जैन

INTRODUCTION

1. The Puṇyāsrava-kathā-kośa

The Jinaratnakośa (Vol. I, H. D. Velankar, Poona 1944) records, under Puṇyāsrava, works by Rāmacandra Mumukṣu, by Nemicandragaṇi and by Nāgarāja, besides an anonymous one. The Puṇyāsrava or Puṇyāsrava-kathā-kośa (Pkk) of Rāmacandra Mumukṣu has been quite a popular work especially among the pious Jainas who have looked upon its study as fruitful and meritorious. The Mss. of this Sanskrit work are found in various parts of the country; and it is seen from the Jinaratnakośa that they are available in the Bhandarkar O. R. Institute, Poona; in the Lakṣmīsena Bhaṭṭāraka's Maṭha, Kolhapur; in in the Manekchanda Hirachanda Bhandara, Chowpatty, Bombay; etc. From the Kannaḍa Prāntīya Tāḍapatrīya Granthasūcī (ed. K. Bhujabali Shastri, Bhāratīya Jñānapīṭha, Benares 1958) it is noted that some Mss. of Pkk are found in the Jaina Maṭha, No. 712 and Jaina Bhavana, No. 73, at Moodbidri (Dt. S. K.). In the Rājasthānake Jaina-śāstrabhaṇḍārōkī Granthasūcī (RJG), Parts I-IV, Jaipur 1948-62, some Mss. of Pkk are noted: Part I, Āmera p. 102, Mahāvīra p. 195, and on p. 39f. the Praśasti is fully given; Part II, p. 21 (1 Ms. incomplete but dated Saṃvat 1473), p. 238 (3 Mss.), p. 376 (1 Ms.); and Part IV, p. 233. One Ms. is reported from the Strassburg Collection as well (Vienna Oriental Journal, Vol. II, 1897, pp. 279 f.). Some More Mss. of this work are found in Beḷgoḷ, Bombay, Mysore and other places. It is quite likely that some Mss. might be lying here and there in private collections also.

Further, the Pkk has attracted the attention of readers in such a way that from pretty early times its translations are prepared in different languages. A similar work in Kannaḍa, in the Campū style, possibly based on this Sanskrit text, was composed by Nāgarāja in A. D. 1331 (Kannaḍa Kavicarite, Vol. 1, Bangalore 1924, pp. 409-12). This Kannaḍa version is further translated into Marāṭhī Ovīs by Jinasena in Śaka 1743, i, e., 1821 A. D. I am given to understand that this Marāṭhī version is already printed and published. Some Old-Hindī versions of this are available: 1) One is prepared by Daulatarāmajī (saṃvat 1777, i. e., 1720); and Mss. of this work are found reported in the RJG noted above: Part II, p. 21; Part III, pp. 84, 226; Part IV, p. 233, It is stated that he used the Pkk of Pāṇḍe Jinadāsa, whose Old-Hindī Anuvāda as seen from a Ms. in the collection of the Laksmīsena Maṭha, Kolhapur, was composed at the time of Akbar. 2) Another is attributed to Jayacandra, Ibidem part I, Amera p. 102 (incomplete). 3) A third is composed by Ṭekacanda, Ibid. Part IV, p. 234. 4) And lastly, one more by Kisanasiṃha (Saṃvat 1773), Ibid. Part III,